विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-
आजीवन शुल्क रु. ५००/-

बुद्धवर्ष २५६०, फाल्गुन पूर्णिमा, १२ मार्च, २०१७ वर्ष ४६ अंक ९

For online Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो, युवा बली आलसियं उपेतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो, पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति॥
-- धम्मपद २८०, मग्गवग्गो

जो उद्योग करने के समय उद्योग नहीं करता, युवा और बलशाली होने पर भी आलस्य करता है, मन के संकल्पों को गिरा देता है, निर्वीर्य होता है - ऐसा आलसी (व्यक्ति) प्रज्ञा का मार्ग नहीं पा सकता।

पुराने साधकों के लिए – प्रवचन (भाग-१)

(लक्खमसी नप्पू हॉल, बम्बई – जुलाई २०, १९८६)

मेरी प्यारी धर्म-पुत्रियो! मेरे प्यारे धर्म-पुत्रो!

तुम्हारे भीतर जो धर्म जागा है वह पुष्ट होता जाय, बलवान होता जाय! तुम्हारे भीतर जो प्रज्ञा जागी है, वह पुष्ट होती जाय, बलवती होती जाय! लेकिन धर्म कैसे पुष्ट होता है? प्रज्ञा कैसे पुष्ट होती है? केवल चाहने मात्र से नहीं होती। चाहते तो सभी हैं। हर समझदार आदमी, हर समझदार साधिका/साधक यह चाहता है कि मेरा धर्म पुष्ट हो जाय, मेरी प्रज्ञा पुष्ट हो जाय, मैं प्रज्ञा में स्थित हो जाऊं, स्थितप्रज्ञ हो जाऊं। लेकिन केवल चाहने से तो दो वक्त का भोजन भी नहीं मिलता। दो वक्त के भोजन के लिए भी मेहनत करनी होती है, परिश्रम करना होता है, पुरुषार्थ करना होता है। और धर्म में पक जाय! प्रज्ञा में पक जाय! और चाहे कि कामना करने से ही पक जायगा तो धोखे की बात हुई भाई! मेहनत करनी है, बहुत मेहनत करनी है।

देखता हूं, अनेक साधक-साधिकाएं किसी शिविर में शामिल होते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं। धर्मरस की एक बूंद भी चख लें तो प्रसन्नता आयेगी ही। धर्म चखा है न! दस दिन के लिए बुद्धिविलास करने नहीं आते, वाणी-विलास करने नहीं आते, छुट्टियां मनाने नहीं आते, पिकनिक करने नहीं आते, तपने आते हैं। तो हर व्यक्ति जो दस दिन के शिविर में आता है, वह कम या अधिक मेहनत करता ही है। और मेहनत करता है तो धर्म का रस चखता है। जो भी धर्मरस चखेगा, उसे बड़ी प्रसन्नता होगी। उसके मन में बड़ा मोद जागेगा। लेकिन दस दिन शिविर कर लेने के बाद फिर उसे भुला दें, घर आकर सुबह-शाम, सुबह-शाम जो पुरुषार्थ करना है, वह करना बंद कर दें, तो धर्म कैसे पुष्ट होगा, प्रज्ञा कैसे पुष्ट होगी? कुछ दिनों के बाद कोई साधक मिलता है, कोई साधिका मिलती है, तो मेरे पास तो एक ही प्रश्न होता है – पूछता हूं, क्यों भाई! साधना हो रही है? क्यों बेटी! साधना चल रही है? तो उनमें से अनेक मुँह लटकाकर जबाब देते हैं – नहीं, कुछ दिन तो चली, फिर छूट गयी; कुछ दिन तो चली, फिर छूट गयी। झूठ बोलते हैं। छूट नहीं गयी, छोड़ दिया। कुछ दिन तो किया, फिर छोड़ दिया। सच्चाई यह है – छोड़ दिया, छूटी नहीं। अपने आप नहीं छूटती। हम छोड़ देते हैं तो छूटती है।

जब शिविर में आते हैं, तो समझते हैं कि भाई, यह जो दिन में तीन बार एक-एक घंटे का अधिष्ठान ले कर बैठते हो, कितना कठिन मालूम होता है। पहले दिन का अधिष्ठान, विपश्यना देते ही पहला-पहला अधिष्ठान कितनी पीड़ा पैदा करता है! एक घंटे निकालना बड़ा कठिन मालूम होता है। सबका अनुभव है। और फिर भी मन को मजबूत करता है – बैठना ही है मुझे घंटे भर। और मान लो – नहीं बैठ पाया, पांव खुल गया तो अच्छा, एक बार खुल गया, दो बार खुल गया। अगली बैठक में नहीं खुलने दूंगा। फिर प्रयत्न करता है। फिर कठिनाई आती है। अगली बैठक में फिर प्रयत्न करता है, फिर कठिनाई आती है। यूं करते-करते आंठवें-नौवें दिन तक पहुँचते-पहुँचते घंटे भर बैठने लगता है न! पहले ही दिन कह दें कि बहुत कठिन काम है, हमसे नहीं होता, हम तो नहीं करेगें; तो ऐसा व्यक्ति कभी घंटे भर अधिष्ठान में बैठ ही नहीं पायगा, जीवन भर नहीं बैठ पायगा।

जब शिविर में आते हैं तो दसवें दिन समझाते हैं न कि एक बरस का अधिष्ठान लेना पड़ेगा। बड़ी कठिनाई आयगी। फिर भी एक वर्ष का व्रत है मेरा, चाहे जो कुछ हो जाय, दुनियादारी के क्षेत्र में चाहे जितना नुकसान हो जाय– और नुकसान होता नहीं, कभी होता नहीं। केवल मन को दृढ़ करने की बात है। जैसे नया-नया साधक विपश्यना की शाम को पालथी मार कर बैठता है और कहता है – चाहे मेरा पांव टूट ही क्यों न जाय, मैं नहीं बदलता। टूटता नहीं न! आज तक किसी का टूटा नहीं। टूट जाय तो हम बैठाये नहीं न! किसी का पांव तोड़ने के लिए थोड़ी विपश्यना सिखाते हैं। जानते हैं, नहीं टूटता इसीलिए कहते हैं – साल भर तक का अधिष्ठान हो और मन में यह दृढ़ संकल्प हो कि चाहे जितनी हानि हो जाय हमारी, दुनियादारी के क्षेत्र में चाहे जितनी हानि हो जाय, हम अपना अधिष्ठान नहीं तोड़ेंगे, बैठेंगे ही। तो जैसे पांव टूटता नहीं, केवल मन के संकल्प करने की बात है; ऐसे ही दुनियादारी में हानि होती नहीं।

धर्म जब हम धारण करते हैं, तो केवल परलोक के लिए नहीं करते। जो धर्म हमें केवल यह वायदा करता है कि मरने के बाद तुम्हें ये मिल जायगा, तुम्हें वो मिल जायगा; इस जीवन में तो कुछ नहीं मिलेगा, पर मरने के बाद मिल जायगा, तो समझ लेना चाहिए – धर्म-वर्म नहीं, धोखा है। सचमुच धर्म होगा तो पहले लोक सुधरेगा, परलोक बाद में सुधरेगा। लोक सुधारने के लिए धर्म। यहीं हमारा जीवन सुधर रहा है कि नहीं? इसी जीवन में सुख-शांति आ रही है कि नहीं? हमारा लोकीय क्षेत्र अच्छा हो रहा है कि नहीं? इस मापदंड से धर्म मापा जाता है। जिसका लोक सुधरने लगा, उसका परलोक अपने आप सुधर जायगा। धर्म भी पालन करें और लोक भी बिगड़े, ऐसा होता नहीं, कभी होता नहीं। तो बस, मन को दृढ़ करने की बात है कि चाहे जो कुछ हो जाय, यह वर्ष भर का अधिष्ठान है; मुझे वर्ष भर सुबह-शाम साधना करनी ही है। और अनेकों का अनुभव हमारे सामने है। जिस-जिस व्यक्ति ने इस प्रकार अधिष्ठान लेकर के वर्ष भर घर में अभ्यास कायम रखा, वह नहीं कहता कि छूट गया, क्योंकि

वह छोड़ता नहीं। फिर छोड़ेगा भी नहीं, कभी नहीं छोड़ेगा। और जिसने छोड़ा उसने यह बारह महीने के भीतर ही छोड़ दिया। दस दिन में छोड़ दिया, बीस दिन में छोड़ दिया, महीने में छोड़ दिया, दो महीने में छोड़ दिया... तो छोड़ ही दिया। तो भाई! यह अधिष्ठान जो वर्ष-भर का लेते हो, ऐसा अधिष्ठान लेकर किसी पर एहसान तो नहीं कर रहे न! न अपने मार्गदर्शक पर एहसान करते हैं, न किसी भगवान बुद्ध पर एहसान करते हैं, न किसी अन्य देवी पर, देवता पर, ईश्वर पर, ब्रह्म पर, अल्लाहमियां पर एहसान करते हैं कि देखो! हम अधिष्ठान पूरा कर रहें हैं। भाई, एहसान अपने आप पर करते हैं न! अपने भले के लिए करना है न!

हर समझदार आदमी को समझना चाहिए कि जब मैं धर्म धारण करता हूं, तो जो लोक मंगल होगा सो तो होगा ही, मेरा मंगल तो होने ही लगा, तत्काल होने लगा। लोक कल्याण होगा सो तो होगा ही, पर मेरा कल्याण तो होने ही लगा; तत्काल होने लगा। आत्ममंगल होने लगा तो सर्व मंगल होने ही लगेगा। आत्मोदय होने लगा तो सर्वोदय होने ही लगेगा। तो किसी पर एहसान नहीं कर रहे, अपने मंगल के लिए, अपने कल्याण के लिए मन को दृढ़ करना है। .....

कल्याण मित्र,

स.ना.गो.

– क्रमशः ... (भाग २)

धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त प्रवचन

(भाग २)

(यह सूत्र बुद्धवाणी के तीन पिटकों में से दूसरे, यानी, सुत्त पिटक के पांच निकायों में से तीसरे- संयुक्तनिकाय के महावग्गो का १०८१वां सूत्र है। पूज्य गुरुजी ने साधकों के लाभार्थ जनवरी, १९९१ में धम्मगिरि पर इस सुत्त की व्याख्या हिंदी एवं अंग्रेजी में करते हुए इसे बहुत अच्छी तरह से समझाया है। सितंबर, १६ की पत्रिका में इसका प्रथम चरण छपा था, (मार्च, १७ में यह क्रमशः दूसरा चरण है।.. सं.)

क्रमशः ... (सितंबर १६ से आगे) —

... **'सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा'-** संक्षेप में, थोड़े में, गहराइयों में यह बात समझ में आ जायगी कि ये पांच उपादान और इन पांच उपादानों से तैयार हुआ यह पांच स्कंध और इन पांच स्कंधों के प्रति जो उपादान है, चिपकाव है, आसक्ति है, वह **दुःख** है। ...

हमें यह लोक मिले कि वह, यह योनि मिले कि वह, हमारे दुःखों का अंत नहीं होता, क्योंकि पांच उपादान हमारे साथ हैं। और सबसे गहरा उपादान इस 'मैं' के प्रति, शरीर के प्रति, चित्त के प्रति है। यह बात साधना करते-करते, गहराइयों में उतरते-उतरते समझ में आती है। यह जन्मना, मरना, बूढ़ा होना,... ये तो बड़े स्थूल-स्थूल दुःख हैं। वस्तुतः दुःख तो पंच स्कंधों के प्रति उपादान ही है। वैसे बहुत बार इन पंच स्कंधों की वजह से सुख मालूम होता है, बड़ी सुखद संवेदना चलती है, बहुत गहराइयों में जाकर बड़ी शांति भी मिलती है, लेकिन उपादान कायम है– यह मैं हूं, यह मुझे कितना सुख मिल रहा है, यह मुझे कितनी शांति मिल रही है!

यह मैं हूं, मेरा है; मैं हूं, मेरा है, बहुत सूक्ष्म अवस्था में भी चलता रहता है। जब तक स्थूल-स्थूल दुःख को ही दुःख मानता है और दुःख के बाहर निकलना चाहता है तो नहीं निकल पायगा। इस राह पर चलते-चलते यह जो सूक्ष्म स्तर का सुख है, जिसे अज्ञान अवस्था में दुनिया के सभी लोग बहुत सुख कहते हैं, बहुत शांति कहते हैं, वह सुख नहीं है। क्योंकि यह क्षेत्र अभी तक पंच स्कंध का ही है, नाम और रूप का ही है। उस अवस्था में कितनी ही सुखद संवेदना क्यों न चलती हो, कितनी ही प्रश्रब्धि क्यों न महसूस होती हो, अभी यह इसी उपादान का क्षेत्र है। इसका मतलब है कि अभी भवचक्र है। यह तो अनित्य अवस्था वाली स्थिति है, हमेशा रहने वाली नहीं है। उसके प्रति आसक्ति, यानी, पंच स्कंधों की आसक्ति। पंच स्कंधों की किसी भी अनुभूति के प्रति आसक्ति होना दुःख ही दुःख है। यों समझ में आने लगे तो समझो गहराइयों में दुःख और उसकी सच्चाई को अनुभूति पर उतार करके देखा।

'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं।' अब दूसरा आर्य सत्य समुदय– दुःख का उत्पन्न होना। **'यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी।'** यह जो तण्हा है, तृष्णा है- यह दुःख है। यह क्यों जागता है? कैसे जागता है? कहने को कहते हैं- दुःख का कारण क्या है? लेकिन भगवान के अपने शब्द देखें, तो वे कहते हैं- दुःख का समुदय क्या है? दुःख का समुदय तृष्णा है। तृष्णा जागी तो दुःख ही जागा। तृष्णा के साथ ही दुःख का उदय हुआ। माने दुःख का कारण ही नहीं, तृष्णा अपने आप में दुःख है।

क्या है तृष्णा? जो है उससे संतुष्टि नहीं, उससे तृप्ति नहीं। और जो नहीं है, उसके लिए व्याकुल है। यह स्थिति हमेशा बनी रहती है – यह नहीं है, यह नहीं है, ...। ऐसी स्थिति कभी नहीं आती कि अब कोई अभाव है ही नहीं। कोई न कोई अभाव हमेशा लिए ही चलते हैं। सब कुछ हो गया, यह तो नहीं है...। अरे, यह कभी नहीं मानेंगे कि "अब कुछ नहीं चाहिए।" अभी और चाहिए, और चाहिए..., इसी को तृष्णा कहा। जैसे गला सूखता हो प्यास के मारे, वैसे तृष्णा का जागना ही दुःख का जागना है।

और कैसी तृष्णा? **कामतण्हा-** कामभोगों की तृष्णाएं, कामनाओं की तृष्णाएं। यह हो जाय, यह हो जाय...। इससे निकलता है तो एक और तृष्णा पीछे लग जाती है।

भव-तण्हा- भव की तृष्णा। क्या पड़ा है इस संसार में? दुःख ही दुःख है। लेकिन 'भव' तो जरूर हो, किसी प्रकार मैं तो कायम रहूं। यह मैं के प्रति, आत्मभाव के प्रति, कितनी गहरी आसक्ति। यह "मैं" कायम रहना ही चाहिए। यह दुःख का संसार, इससे छुटकारा हो लेकिन एक अमर लोक तो चाहिए ही– तो स्वर्ग लोक अमर है। फिर कोई कहे, स्वर्ग भी अमर नहीं है, वहां भी मृत्यु आती है। अच्छा, किसी ब्रह्मलोक में जन्म हो जाय। मैं अमर हो जाऊं। कोई कहे– नहीं-नहीं, निर्वाण होगा तब जाकर अमर होगे। तो मेरा निर्वाण हो जाय। पर मैं तो कायम रहूं, मैं भव में रहूं। कहीं अभव में न चला जाऊं। मैं भव में रहूं।

ऐसे में जब कोई कान में कह देता है कि बाकी सारा कुछ नष्ट होने वाला है पर तू तो कायम रहेगा। यह बात बहुत प्रिय लगती है। बाकी सारी बात नष्ट हो जायगी, पर मैं तो कायम रहूंगा ही। इसी को भव-तृष्णा कहा। यह स्थिति बनी रहनी चाहिए कि मैं कायम रहूं। इस भव में रहूं या उस भव में रहूं; इस लोक में रहूं या उस लोक में रहूं, लेकिन मैं कायम रहूं।

विभव-तण्हा- ऐसे ही विभव-तृष्णा। दो अंत हैं। एक अंत तो भव में रहना चाहता हूं, दूसरा विभव में। मुझे इस सारे भवचक्र से मुक्त होना है। अरे, 'विभव-विभव'..। यह चाहिए-चाहिए की बीमारी है न! यह विभव-तृष्णा भी हमको उस अवस्था पर नहीं ले जायगी। वह तो

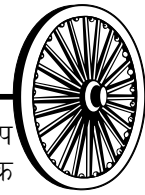

मुक्ति की अवस्था है। अष्टांगिक मार्ग पर चलेंगे तो अपने आप भवचक्र टूट जायगा और मुक्त हो ही जायँगे। परंतु जब तक उसकी तृष्णा है तब तक मुक्ति बहुत दूर है।

'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं।' यह एक आर्य सत्य, जिसमें दुःख का निरोध हो गया। समाप्त हुआ। पर कैसे समाप्त हो गया? **'यो तस्सायेव तण्हाय असेसं'**- जहां तृष्णा 'असेस', यानी, शेष नहीं है। अब रंचमात्र भी तृष्णा नहीं रह गयी। 'असेस विरागं'- राग नहीं रह गया जरा-सा भी। तृष्णा नहीं रह गयी; राग जड़ों से निकल गया। वीतराग अवस्था प्राप्त हो गयी तो 'निरोधो'- निरुद्ध हो गया। थोड़ी देर के लिए न जागे एक बात हुई। पर अब तो राग जाग ही नहीं सकता। ऐसी अवस्था को प्राप्त हो गया- तब 'निरोधो'। अब सारा छूट गया। किसी में जो-जो आसक्ति थी, आसक्ति के आलंबन थे, वे सारे छूट गये। 'पटिनिस्सग्गो'- उन सबसे निकल गया। 'मुत्ति'- वह मुक्त अवस्था है। 'अनालयो'- अब कुछ और ग्रहण करने के लिए कोई आलय है ही नहीं, कोई सहारा है ही नहीं।

सारे सहारों, सारे आलंबनों को तोड़ करके, जो अवस्था प्राप्त हुई वह निर्वाण की अवस्था है। जब तक नाम और रूप के क्षेत्र में, छहों इंद्रियों के क्षेत्र में विचरण कर रहा है, तब तक वह अवस्था नहीं। वह अवस्था इन सबके परे-- निर्वाणिक अवस्था है। और यह निर्वाण की निरोध अवस्था, अर्हंत की निरोध अवस्था, स्रोतापन्न की निर्वाणिक अवस्था-- हमें मुक्ति की ओर ले जाने में सहायक हुई। एक अंश में हमारी मुक्ति हुई। नीचे के अपाय लोकों से हमारी मुक्ति हुई। लेकिन अभी और लोकों से हमें मुक्त होना है। यों होते-होते अर्हंत अवस्था की अनुभूति कर ली। उसका निरोध, यानी, निर्वाण की अवस्था का अनुभव कर लिया तो बिल्कुल मुक्त हो गया। उस अवस्था के लिए कहा कि अब इसके बाद पकड़ने के लिए और कुछ नहीं है। एकदम मुक्त है। सारी तृष्णा एकदम अशेष हो गयी, समाप्त हो गयी।

'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनीपटिपदा अरियसच्चं'। अब यह चौथा आर्य सत्य। यह मध्यम-मार्ग की प्रतिप्रदा, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा-- **'अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो... सम्मादिट्ठि... सम्मासमाधि... इत्यादि।'** यह उस अवस्था तक पहुँचाने का मार्ग। ये चारों के चारों आर्य सत्य, यह धर्म का पहला प्रकाशन है। इसे समझना चाहिए।

क्या विशेष बात कही इस आदमी ने? जो भिन्न-भिन्न मत कायम थे उस समय, ऐसे किसी संप्रदाय के नेता से बात करें या अपने आपको धर्म का नेता कहने वाले से बात करें- तो वे सब यही कहेंगे- मुक्त अवस्था पर पहुँचना है। पर कैसे पहुँचना है? क्या है मुक्त अवस्था? किसकी मुक्ति? काहे से मुक्ति? वह सारी बात गौण हो जायगी- और उस मुक्त अवस्था पर पहुँचना है- इस बात को लेकर ऐसे जंजाल में पड़ेंगे कि मुक्ति के विपरीत रास्ते पर भागेंगे। परंतु जब शुद्ध धर्म जागेगा तो और निकम्मी बातें, जिन बातों का हमारे बंधन से, बंधनों के कारण से; हमारी मुक्ति से, मुक्ति के उपाय से कोई लेन-देन नहीं- इन सारी बातों को एक ओर रखेंगे। फिजूल बातें हैं, निकम्मी बातें है। छोड़ो इन्हें। ये दार्शनिक मान्यताएं हैं, लोगों को उलझाये रखती हैं-- धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर, मानो इस मान्यता को मानने की वजह से ही मैं मुक्त हो जाऊंगा। शुद्ध धर्म में इन सबको कोई स्थान नहीं।

'दुःख है'- किसी मान्यता को मानने वाला हो, इस संप्रदाय में दीक्षित हो कि उस संप्रदाय में, इसे नकार नहीं सकता- दुःख तो है ही। यह केवल बौद्धों का या किसी सम्यक संबुद्ध का तैयार किया हुआ सत्य नहीं। कोई व्यक्ति सम्यक संबुद्ध नहीं बना तब भी दुःख तो है ही। वैसे ही दुःख का कारण तो है ही। दुःख के कारण को दूर करने का उपाय तो है ही। उस उपाय को ग्रहण करके दुःख को बिल्कुल खत्म कर देने की अवस्था पर पहुँचना है।

उस सच्चाई को, प्रकृति के उन नियमों को, जिनको समय बीतते-बीतते मानव समाज भूलता चला जाता है और उसकी जगह किसी निकम्मी बात को पकड़ते चला जाता है। यह दुःख किसी एक संप्रदाय, एक जाति, एक वर्ण, एक समाज का नहीं है। जीवन-जगत की यह इतनी बड़ी सच्चाई है-- दुःख है।

दुःख का कारण है तृष्णा है, वह किसी एक जातिविशेष, वर्गविशेष, वर्णविशेष, देशविशेष या समयविशेष की नहीं है। तृष्णा जब जागे, जिसमें जागे दुःख के साथ ही जागेगी। यह प्रकृति का अपना नियम है। शुद्ध धर्म को इसी माने में सद्धर्म कहते हैं, सत्य धर्म कहते हैं। यह जीवन-जगत की, प्रकृति की सच्चाई है -- तृष्णा जागी कि दुःख जागा। तृष्णा दूर हुई, तो दुःख दूर हुआ।

तृष्णा दूर होने के लिए तृष्णा जहां जागती है वहां तक पहुँचना होगा। तो पहले हमारे शरीर के, वाणी के जो ऊपरी-ऊपरी काम हैं, इनको सुधार करके शील को विशुद्ध करना होगा। उसके बाद मन को अपने वश में करके, क्षण-प्रतिक्षण अपने मन को ऐसी स्थिति में रखें कि उसमें विकार नहीं जागे, इसके लिए समाधि का अभ्यास करना पड़ेगा। अंतर्मन की गहराइयों में जो विकार संग्रह कर रखे हैं, उनको दूर करने के लिए प्रज्ञा का अभ्यास करना पड़ेगा।

शुद्ध धर्म, कुदरत का कानून सार्वजनीन है। इन चारों बातों में हम देखेंगे कि गहराइयों तक दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख। जिसको हम सुख कह रहे हैं वस्तुतः वह भी दुःख है। यह बात अब अनुभूतियों से पकड़ में आ जायगी कि दुःख क्यों है? सुखद अनुभूतियों से चिपकाव ही हमारे दुःख का कारण है। हम दुःखद अनुभूति नहीं चाहते, हमको सुख ही चाहिए, ऐसी गहरी आसक्ति है। बार-बार, बार-बार वैसा ही चाहिए और वह हमेशा होता नहीं तो व्याकुल होते हैं। या हो गया तो उससे और ज्यादा सुख चाहिए, और ज्यादा सुख चाहिए। व्याकुल ही व्याकुल, व्याकुल ही व्याकुल।

यह बात समझ में आ गयी तो दुःख समझ में आ गया। दुःख का कारण समझ में आ गया। उसको दूर करने का रास्ता है। उसे जानना है- देख कैसे दुःख जागता है? मेरे भीतर जहां तृष्णा जागती है वहां तक पहुँचना है। वहां तक पहुँचने के लिए मन को शांत करना पड़ता है, एकाग्र करना पड़ता है। और फिर अंतर्मन की गहराइयों में जाते-जाते देख, तृष्णा जागी न! सुखद अनुभूति हुई तो राग जागा न! दुःखद अनुभूति हुई तो द्वेष जागा न! और यह बात सबकी होती है। सार्वजनीन बात है। यह पहला उपदेश ही इस बात को सिद्ध करता है कि यह व्यक्ति सचमुच सम्यक संबुद्ध है। इसको किसी संप्रदाय से लेन-देन नहीं। इसके सामने एक ही लक्ष्य है कि किस तरह से सारे लोग जो व्याकुल हैं, दुखियारे हैं, और उनके दुःखों का यह कारण है, उसे दूर करें। जैसे मैंने अपनी अनुभूतियों से जाना और अपने दुःखों का निवारण कर लिया, इसी तरह सब लोग अपनी अनुभूतियों से जान कर अपने-अपने दुःखों का निवारण कर लें। इस मारे लोगों को शुद्ध धर्म बांटता है।

यह पहला उपदेश ही है जिसे वे अपने जीवन के पैंतालीस वर्षों तक देते चले गये। उसका जो स्वरूप सामने आता है, वह है चार आर्य सत्य। ...

-- क्रमशः ... (भाग-३)

Registered No. NSK/235/2015-2017

पगोडा पर संघदान सोल्लास संपन्न

सयाजी ऊ बा खिन एवं पूज्य माताजी की पुण्यतिथि के अवसर पर २२ जनवरी को हुए संघदान में लगभग १३० भिक्षु सम्मिलित हुए। सभी दानी बड़ी प्रसन्नता के साथ संघ को दान अर्पित करके पुण्यार्जन के भागीदार हुए। मन की प्रसन्नता ही सर्वोपरि है। भगवान ने कितना ठीक कहा है- **इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।** पूज्य गुरुदेव ने भी कहा– **दुर्मन का फल दुखद ही, सुखद सुमन का होय।** प्रसन्नतापूर्वक किये हुए कार्य का ही सत्फल प्राप्त होता है।

इसी प्रकार धम्मपत्तन का **कृतज्ञता शिविर** बहुत सफल रहा। इसके समापन पर पगोडा-दर्शन के समय श्री खंधारजी ने जिन कृतज्ञतापूर्ण उद्धरणों का विवरण दिया, वह सभी साधकों के लिए अत्यंत प्रेरणाजनक रहा। सबका मंगल हो।

अतिरिक्त उत्तरदायित्त्व

१. श्री प्रकाश लड्ढा, धम्मगिरि, धम्म तपोवन १ व २ इगतपुरी के केंद्र-आचार्य की सहायता सेवा

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. कु. बीना झालानी, दिल्ली
२. श्री दीपक सनेर, नाशिक
3. Mrs. Swarna Podimenike, Sri Lanka
4. Mr. Vincent Yucheng Pai, Taiwan
5. Mr. Arthur Yuguang Chen, Taiwan
6. Mr. Shiran Fan, China

बालशिविर शिक्षक

१. श्री पोरेड्डी थिरुमला रेड्डी, आर.आर.जिला, तेलंगाना
२. श्री विष्णु सालवे, पुणे,
३. श्रीमती अरुणा लाहोटी, पुणे
४-५ श्री सुधन एवं श्रीमती मीना चकमा, मिजोरम
6. Ms.Yuhsiu Chen, Taiwan
7. Mr. Kenneth Haydock, Australia

क्षेत्रीय बालशिविर संयोजक

(New RCCC for Thailand)

1. Mrs. Colleen Schmitz, Thailand

सांगली के समीप नया विपश्यना केंद्र- धम्म सुगन्ध

महाराष्ट्र में सांगली जिले के भोसे गांव में साढ़े चार एकड़ जमीन पर विपश्यना केंद्र- **धम्म सुगन्ध** के निर्माण का काम आरंभ हो गया है। यह तोदोबा पहाड़ियों की तलहटी में तीन तरफ से हरियालीभरी वनविभाग की जमीन से घिरी है और मिरज रेल्वे स्टेशन से २० किमी. दूर है। केंद्र के उपयुक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर ली गयी है और एक दिवसीय शिविर लगने आरंभ हो गये हैं। अस्थाई सुविधाओं के साथ शीघ्र ही लगभग २५ साधक या २५ साधिकाओं के २-३ शिविर लगाने की योजना है। पगोडा के निर्माण के साथ ४० महिला एवं ६० पुरुषों के निवासादि की योजना बन चुकी है। जो भी साधक-साधिका इस महान पुण्यवर्धक काम में भाग लेना चाहते हों, कृपया निम्न पते पर संपर्क करें– श्री सुनील चौगुले- ९४०३८४१९४३ या श्री शीतल मुलेय- ९४२२४१०४३६, ईमेल- sanglivipassana@gmail.com **बैंक व्यवहार-** 'सांगली विपश्यना मेडीटेशन सेंटर', कारपोरेशन बैंक, सांगली, बचत खाता क्र. 033800101012921, IFSC no. CORPO000338.

ग्लोबल विपश्यना पगोडा में २०१७ के एक-दिवसीय महाशिविर

रविवार, १४ मई को बुद्ध पूर्णिमा के उपलक्ष्य में; **रविवार, ९ जुलाई आषाढ़ पूर्णिमा** (धर्मचक्र प्रवर्तन); तथा रविवार, **१ अक्टूबर शरद पूर्णिमा** एवं **पूज्य गुरुजी की पुण्यतिथि के** उपलक्ष्य में। **समयः** प्रातः ११ बजे से अपराह्न ४ बजे तक* ३ बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपो सुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170, 022-28452111, 8291894644 - Extn. 9, (**फोन बुकिंग : ११** से **५** बजे तक, प्रतिदिन)

Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org

दोहे धर्म के

ज्यों समाधि संपुष्ट हो, करते आनापान।
त्यों सम्यक दर्शन जगे, जागे सम्यक ज्ञान॥

आते-जाते सांस पर, रैन-दिवस रख ध्यान।
विचलित चित अविचल बने, होय परम कल्याण॥

तृष्णा भव की, विभव की, दुःखदायी ही होय।
लेकिन तृष्णा काम की, दुःखद अपरिमित होय॥

कदम-कदम चलते हुए, होवे तृष्णा दूर।
अंतर्मन होवे विमल, मंगल से भरपूर॥

◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- ४०० ०१८
फोनः २४९३ ८८९३, फैक्सः २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net

की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धर्म रा

चेत करयां प्रग्या बढै, बेचेतै घट ज्याय।
प्रग्या पाप नसावणी, भव बंधन कट ज्याय॥

उळझण ही उळझण बढी, मिल्यो न दुख रो अंत।
मुक्ति मोक्छ निरवाण रो, पंथ दियो भगवंत।

जदि संबुध ना ढूंढता, सांच धरम रो पंथ।
बढतो जातो भटकतां, भवभय दुक्ख अनंत॥

सदाचार धारण करै, जद मन बस मँह होय।
ज्यूं प्रग्या मँह स्थित हुवै, जीवन मुक्ती होय॥

◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇◇

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: morolium_jal@yahoo.co.in

की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-४२२ ००७. **बुद्धवर्ष २५६०, फाल्गुन पूर्णिमा, १२ मार्च, २०१७**

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-, US $ 10, आजीवन शुल्क रु. ५००/-, US $ 100. 'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/235/2015-2017

Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

DATE OF PRINTING: 1 March, 2017, DATE OF PUBLICATION: 12 March, 2017

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. **फैक्स :** (०२५५३) २४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in;
course booking: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org